पंखुरियाँ

मुकुल प्रभात केदार

'उनमें मुझे अर्द्ध-मीलित कलियों के परिमल का प्रथम परिचय भी मिला और सुरभित वासन्ती भविष्य की आशा भी'
—ये शब्द प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने लेखक की पहली रचना 'अधखिले फूल' की भूमिका में लिखे थे।
'पंखुरियाँ' उसी लेखक की नवीन कृति है—कुछ सुन्दर और सुगंधित फूलों की पंखुरियाँ, मन्दिर में चढ़ाया अर्घ्य-रूप।
बंधन-मुक्त काव्य चित्रमय और स्वाभाविक अभिव्यक्ति होने से हृदय को भाव-सौरभ से सराबोर कर देता है।
'पंखुरियाँ' भी जीवन की कड़वी-मीठी अनुभूतियों का अंतर-बोध होने से पाठक के हृदय को अवश्य छू लेंगी।
भाव-लोक में विचरते एक कवि के स्वच्छंद गीत शास्त्रीय संगीत के सुर-ताल पर पूरे न भी उतरें, पर वे अपने में एक विशेष आकर्षण और माधुर्य संजोये रखते हैं।
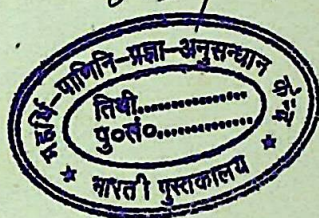
पंखुरियाँ

मुकुल प्रभात केदार

वाणी प्रकाशन
दिल्ली-११०००७

अध-खिले फूलों की
झरती पंखुरियाँ
धरती माँ के
चरणों में
समर्पित !

अपनी बात

जीवन सचमुच एक लम्बी यात्रा है—कठिन और ज़ोखमभरी। अदृश्य मंज़िल को जानना और पा लेना किसी-किसी के भाग्य में ही हाता है।

मेरा जन्म उर्दू के प्रसिद्ध कवि डा० इकबाल की जन्मभूमि स्यालकोट नगर (अब पश्चिमी पाकिस्तान में) १७ अप्रैल १९०६ ई० में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा उर्दू अंग्रेज़ी भाषाओं में मिली। इकवाल और टैगोर की रचनाओं का विशेष प्रभाव पड़ा और साहित्य में रुचि पैदा हुई।

मेरे जीवन के प्रवाह में न जाने कितने मोड़ आए—अनेक बार मुझे इधर-उधर फेंकते और हर बार एक नई धारा के रूप में बहा देते हुए। स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लेते हुए सरकारी स्कूल का बहिष्कार करने के बाद नैशनल कालेज लाहौर में प्रविष्ट होने पर अनेक हिन्दी-प्रेमी प्रोफेसरों और साहित्यिकों के सम्पर्क में आने पर हिन्दी के प्रति आकर्षण पैदा हुआ और मैंने शीघ्र ही प्राणपण से उसे अपना लिया।

मेरी साहित्य-साधना देहरादून की सुरम्य घाटी में निवास करते हुए प्रारंभ हुई। वहीं प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के एक-दो बार दर्शन हुए। थोड़े दिनों बाद ही मेरी प्रथम गद्य-काव्य रचना 'अधखिले फूल' विश्व-साहित्य ग्रंथमाला, लाहौर से प्रकाशित हुई। उसकी भूमिका में श्रीमती महादेवी जी ने लिखा था—"उनमें मुझे अर्ध-मीलित कलियों के परिमल का प्रथम परिचय भी और सुरभित वासन्ती भविष्य की आशा भी।"

उसके बाद मेरे लेख और कहानियाँ विशालभारत, सरस्वती, चाँद, माधुरी, हंस, सुधा, विश्वमित्र, विप्लव, आदि में बराबर छपते रहे। हाल में भी मेरी कुछ कहानियाँ हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

जन्म पर मेरे माता-पिता ने मुझे केदारनाथ नाम दिया था। इलाहाबाद कालेज में पढ़ने के दिनों में मैं अपने को मुकुल प्रभात केदार लिखने लगा था। अधिकतर रचनाएँ हिन्दी पत्रिकाओं और अंग्रेजी पत्रों में लेख आदि एम० पी० केदार के नाम से प्रकाशित हुए हैं।

'पंखुरियाँ' पिछले दिनों समय-समय पर लिखे मेरे काव्यों का संग्रह है। कुछ फूलों की पंखुरियाँ—मन्दिर में चढ़ाया अर्घ्य-रूप है।

सहृदय पाठकों को इसमें कुछ भी सौंदर्य और सौरभ का आभास मिला तो मैं अपनी साधना सार्थक समझूँगा।

—मुकुल प्रभात केदार

'नवनीत'
४०, सिविल लाइन्स,
रुड़की (उ० प्र०)
१७ अप्रैल, १९७८

क्रम

आँचल

तेरे स्नेह
का
सुनहला आँचल
जब मेरी
कलुषित देह,
ढक लेता है,
तो अपने आप पर
मुझे गर्व
होने लगता है
और मेरे भीतर
यही अभीप्सा
जाग उठती है,
तेरे ही आंचल में
मेरी कुरूपता
स्थाई रूप से
छिपी रहे ।

अश्रु-कण

इन्हें रजत
अथवा स्वर्ण-कण
कहने की धृष्टता
भला मैं
कैसे कर सकता हूँ ?
रात के
नीरव अंधकार में
चुप···चाप
बहने के बाद
प्रभात के
स्निग्ध स्नेह का
शीतल स्पर्श
पाकर
जीवन की
दूर्वा पर बिखरे
ये मेरे ही
अश्रु-कण हैं।

छाया

मेरी अपनी छाया
पीछा करती हुई
कभी-कभी मुझे
भय-ग्रस्त कर देती है
उस में छुटकारा
पाने के लिए
मैं अंधकार की
शरण लेता हूँ
मेरे हत भाग्य !
छाया के साथ
स्वयं को भी मैं
प्रायः खो देता हूँ ।

शिशु

शिशु
एक दर्पण है
जिस में तुम
अपना ही प्रतिबिंब
देखते हो ।
उसके मुख पर
पड़ी रेखायें
तुम्हारे ही चेहरे की
जीती-जागती
तसवीर हैं ।
दर्पण को
दोष क्यों देते हो ?
अपने ही हाथों बनाई
वह तुम्हारी अपनी
तकदीर है ।

मोम बत्ती

उस का
कण-कण
पिघलता है
और गर्म-गर्म
बूंदें
टपक-टपक कर
उसी की देह
जलती है।

चकाचौंध नहीं
केवल
झीना स्निग्ध प्रकाश
चहुँ ओर
फैला कर
वह गहन अँधियारा
मिटाती है।

समूची
जल जाने पर

भी
न राख, न कालिख
केवल
एक छोटा सा दाग
छोड़ जाती है।

धूप का टुकड़ा

सुनहरी धूप का
छोटा सा टुकड़ा
बंद कोठरी
के
झरोखे में
अकस्मात्
मेरे अंधेरे जीवन में
एक
अलौकिक चकाचौंध
भर गया !
परन्तु
कितना क्षणिक
कितना अस्थाई
था वह !
शीघ्र ही
मैं
पुनः
अंधकार और सीलन
की

घुटन भरी जिन्दगी
जीने के लिये
विवश हो गया
धूप का
वह छोटा सा
टुकड़ा
जाने एकदम
कहाँ
विलुप्त हो गया !

दुर्भाग्य

जब तुमने अतुल भंडार
मेरे सामने खोल दिये
मैं कितना प्रसन्न था।

जब तुमने दिव्य सौंदर्य
खुले दिल से बिखेरा
मैं कितना आह्लादित हुआ।

और एक दिन तुम ने
भूखे अजनबी के रूप में
सामने आकर भोजन माँगा

मैंने अहंकार के मद में
अपने प्रासाद के
समूचे द्वार बंद कर लिये।

बाहिर एक अट्टहास हुआ
वह मेरा दुर्भाग्य ही तो था !

भिक्षु

भिक्षु !
तुम ने
मेरे द्वार पर आकर
मेरा मान बढ़ाया,
तुमको
शत शत प्रणाम !

भिक्षु !
तुमने
अलख जगा कर
मेरी सुख-सम्पन्नता
का
मुझे आभास कराया,
तुम्हारा
कोटिशः धन्यवाद !

हे भिक्षु !
अपनी झोली
भरपूर भर ले

जिस से
मेरा ऐश्वर्य सार्थक हो
और
मेरी यात्रा का बोझ
हलका हो ।

जाल

मकड़ी की तरह
एक जाल
आकांक्षाओं का
अपने चारों ओर
मैं बुन लेता हूँ
जीने की चाह लिये
शिकार की प्रतीक्षा में !

परन्तु यह कैसी विडम्बना !
अपने ही बुने जाल में
मुझे भूखे-प्यासे ही
एक दिन अपने प्राण
गँवा देने पड़ते हैं !

समय

वह कभी रुकता नहीं
न मुड़कर पीछे देखता है
निर्मम, निरीह, निर्विकार
वह सदा आगे ही बढ़ता है।

भूत उसे बाँधने में असमर्थ
और वर्तमान भी थका-हारा
उसका साथ छोड़ देता है।

परन्तु भविष्य उसके
गर्भ में सुरक्षित पड़ा
बराबर पनपता रहता है।

विवशता

जमाने के
क्रूर हाथों
मुझे बार-बार
अनिच्छा-पूर्वक
जलने के लिये
मजबूर होना पड़ता है।

हर बार मैं
नया जन्म लेकर
नये पुरुष को
वरती
और
प्यार करती हूँ
शायद यही
मेरा अपराध है।

परन्तु
मैं विवश हूँ
क्योंकि

मेरे मरने पर
कभी कोई पुरुष
मेरे साथ

सती होने के लिये
तैयार नहीं हुआ !

मुस्कान

बच्चे की
निर्दोष मंद मुस्कान में
उसका ही
भविष्य नहीं,
विश्व का
दूर अनागत भी
झांकता हैं ।

अतीत

अतीत के
इस स्वर्णिम
रत्न-जड़ित
पिंजरे में,

मुझे
सदा के लिये
क्यों बनाये हो
बंदी ?

भले ही
यह पिंजरा
आकर्षक और
मूल्यवान है

प......र
मेरा जिज्ञासु मन
तो
मुक्त आकाश की

गहनता में
स्वछंद उड़ना

और नये
उगते सूरज की
झिलमिलाती
किरणों को
सहज चूमना
चाहता है।

आशा-दीप

जीवन की
अंधेरी कोठरी
में
कितने ही
आशा दीप
जलाये,

पर वे सब
एक-एक कर
बुझ गये।

फिर भी
बुझे दीपों के
किसी अज्ञात कण से
कभी न कभी
जल उठने की
आशा लिये
बैठा हूँ।

दिव्य दीप्ति

गुलाब की पत्तियों जैसे
उस के कोमलों अधर
अपने चारों तरफ़
भोली मुस्कान बिखेरते।

उस की गहरी निर्मल
पारदर्शी आँखें
सहज संवेदना के
मधुकण सतत बरसातीं।

और फांसी के तखते पर
हर्षोल्लास की मस्ती में
झूलती उस की देह भी
दिव्य दीप्ति से ओतप्रोत
हो उठी।

(हेमू कल्याणी की स्मृति में)

दर्शन

दार्शनिक कहता है
अंतर्लीन होकर
अपने को ज़ानो ।

परन्तु
तत्व-दर्शी का
कहना है
बहिर्मुखी बनो
और अपने पड़ोसी को
पहचानो ।

तुम और
तुम्हारा अपना
अस्तित्व ही
सब कुछ नहीं है ।
कितना विशाल
और गहरा सागर
चारों ओर
उद्वेलित है !

जिसमें तुम
केवल
एक बूँद हो।

हर बूँद और
प्रकृति के हर
कण में
तुम्हें अपना प्रतिबिंब
दीखेगा।

बंद कमल
पंखुड़ियाँ खोल
अपना सारा
सौंदर्य-सौरभ
बिखेर देता है।

तुम भी अहं की
दीवारें तोड़
अपना स्नेह-सौरभ
लुटा दो
जन-जन के लिये।
यही जीवन का
सत्य दर्शन है।

सूत्रपात

सन्नाटा भरी रात
तारों की छाँव
रावी नदी में
नौका-विहार करते
वहते जल की
साक्षी में

दूर तट पर
उगे घने वृक्षों
को सम्बोधित
कर

उस ने
एक हुंकार
भरी थी
तव मैं
क्या जानता था
वह एक
महान् क्रांतिकारी
के

अंतर-मानस में

उठे

दृढ़-संकल्प

का सूत्रपात

था।

(भगत सिंह जी की याद में)

कलश

कितने ही युगों से
कण-कण
एकत्रित कर
मैंने जीवन-कलश
भरा था।

दुर्भाग्य वश
मेरी ही असावधानी से
विवेक का
झिलमिलाता दीपक
बुझ गया।

और मैं
निबिड़ अंधकार में
टकराया,
लड़खड़ाया
औंधे मुँह
गिर पड़ा।

मेरा वह कलश
टूट गया
धरती पर गिर
और सब कुछ
बिखर गया।

अधिकार

अनवरत साधे मौन में
मेरे मन की गहराइयों से
सदा उठती पुकार
सुनाई नहीं पड़ती।
मेरे निरन्तर खुले दृगों की
स्थिर दृष्टि में जमी
मेरी अंतर-पीड़ा
दिखाई नहीं देती।
मेरे चारों तरफ़ घिरी
सपाट शून्यता में
मेरे स्पंदित सांसों का
सहज स्पर्श नहीं होता
और मेरे ठहरे हुए
जीवन के अन्तराल में
प्रतिबिंबित मेरी करुणा का
आभास नहीं मिलता,
तब मैं सचमुच ही
जीने का अधिकार
खो चुका हूँ।

कटी पतंग

खुले असीम आकाश में
सब मर्यादाओं को तोड़
निरुद्देश्य उड़ती
मैं एक कटी पतंग हूँ
जिसका संदर्भ
अपने ही परिवेश से
बिल्कुल कट चुका है।

खाली हाथ

नया जाल कंधे पर डाल
पौ फटते ही मैं
सागर-तट पर जा
लहरों पर नृत्य करती
किरणों के मोहक खेल को
बड़ी देर तक देखता रहा
यह सोचकर
कि अभी बहुत समय है।

जाल को एक ओर रख
किनारे पर फैली
चमकती बालू में
सीप और घोंघे खोजने में
मैं व्यस्त हो गया
यही सोचते हुए
अभी बहुत समय है।

मैंने कितने ही
छोटे-छोटे घरौंदे बनाये

फिर दोपहरी बेला में
आलस्य का शिकार हो
मीठी नींद सो गया
यह समझ कर
कि अभी बहुत समय है !

घोंसलों को लौटते हुए
पक्षियों की फड़फड़ाहट ने
एकदम मुझे चौंका दिया
और मैं घबराकर उठा
मेरे हाथों से बने घरौंदे
मेरे ही पद-प्रहार से ढह गये
एकत्रित सीप और घोंघे
मेरी हँसी उड़ाने लगे ।

घनीभूत होते अन्धकार
और बढ़ती नीरवता में
हताश और आतंकित
जाल कंधे पर रख
मन में गहरी टीस लिए
मैं खाली हाथ
घर लौट आया ।

अहंकार

मुक्त करो मुझे
मेरे बढ़ते हुए
अहंकार से,
नहीं तो एक दिन
इसी का भार
ले डूबेगा मुझे
मंझधार में।

मृत्यु का सन्त्रास

मैं मृत्यु से डरता रहा
वह आँखें दिखाती रही
मैंने उसे ललकारा
वह आँखें चुरा गई।

अटूट विश्वास

रात
गहरी नीरवता में
तारे गिनती रही
अटूट विश्वास लिए,
सुबह वह आएगा
और उसकी मांग में
अपने हाथ से
सिंदूर भरेगा।

अमूल्य थाती

एकाएक
मेरे मानस-पटल पर
अनेक
मधुर स्नेह-स्मृतियाँ
वसंत-ऋतु की
सुहावनी फुहार
की तरह
बरस गईं
और
अतीत की टीस लिए
असंख्य अश्रु-कण
मेरे उदास
मुख-मंडल पर
ढुलक पड़े।
बस
केवल यही अब
मेरी एक मात्र
अमूल्य थाती है।

घूँघट

संकोच त्याग
रात ने
घूँघट उठाया,
दिन ने
मुसकरा दिया
और वह
लाज से
लाल हो गई।

आश्चर्य !

सत्य के सहारे
कितना असत्य पलता है
और न्याय के पलड़े में
कितना अन्याय तुलता है ?
स्वर्ण की चमक लिए
पीतल ऊँचे भाव बिकता है
और अहिंसा की छाया में
हिंसा भी बेखटके
निरन्तर पनपती है !

मरुभूमि

संदिग्ध हृदय की
मरुभूमि में
स्निग्ध प्यार के
ओस-कण
गिरकर
खो जाते हैं।

एक प्रश्न

बिल्लौरी जाम
में
छलकती
आनन्द और
जीवन-दायिनी
शराब,
मिट्टी के
कसोरे में
पी हुई
गरीव के
लिए
ज़हरीली
और प्राणलेवा
अभिशाप
क्यों
हो जाती है ?

छलना

तुम्हारा ही अंग
अथवा प्रतिविंब हूँ
जो कुछ भी हूँ,
तुम ही तो हूँ
फिर आराधना,
पूजा, उपासना
किस की
ओर कैसी !
यह सब
अपने और
तुम्हारे प्रति
मात्र छलना
नहीं है क्या ?

आज की दुनिया

आज की दुनिया में
सब कुछ ही
सरे आम बिकता है।
नारी की देह
और पुरुष का
ईमान विकता है।
इंसान ही नहीं,
धर्म की ओट में
भगवान बिकता है।
और कितना आश्चर्य !
सब कुछ 'ब्लैक' में
आसान मिलता है।

मुखौटा

सूर्यास्त होते ही
साँझ की काली छाया
मँडराने लगी

रात का अंधियारा
धीरे-धीरे
डरावना होता गया

अविकल सन्नाटे में
अपने ही चेहरे का
नकली मुखौटा
मुझे भयभीत कर उठा !

दिशा-भ्रष्ट

थका-माँदा
एक यात्री
मंजिल से
अभी भी
कोसों दूर,

आँखों में
लालसा
अधरों में
प्यास लिए
लंबी-लंबी सांसें
लेता है

और फिर
सघन हो रहे
अंधियारे में
अपने ही

संजोए स्वप्नों की
भूल भुलैया में
सदा के लिए
खो जाता है।

घोंसला

अपने ही भीतर से उठी
आंधी के प्रबल प्रहार से
मेरी कल्पनाओं का
चिर-निर्मित घोंसला
तिनके-तिनके होकर
सदा के लिए
बिखर गया।

सार्थक जीवन

नन्हा-सा बीज !
कितनी ही
अंधेरी
ठंडी रातों में
उसने
अनवरत तपस्या की
अपना
कण-कण गलाया
स्व को मिटाया
और एक दिन
उसमें से
अनगिनत
सुमनों का
सौंदर्य-सौरभ
फूट पड़ा
जीवन को
सार्थक करता ।

१

अभीप्सा

मेरी
कुँवारी अभीप्सा
ने
शान्त एकान्त
नशीली रात में
अँगड़ाई
　　　　　ली।
लज्जा-भार से
मेरी
उनींदी पलकें
बरबस
　　　　　झुक गईं
और मैंने
अपना
मुख
अपने ही
आँचल में
　　　　　छिपा लिया।

नियति और भाग्य

खिलना
कली
की
नियति है,
परन्तु
खिलकर भी
किसी का
स्नेह-स्पर्श
हर कली
के
भाग्य में
नहीं
होता।

विदा होती बधू

उस घर के
कण-कण के लिए
मोह की गंध से
बोझिल उस के पग
रुक-रुक पड़ते ।

अध-मुँदे नयनों में
परिवार के नेह का
भार लिये
जल-कण अपने आप
झर-झर पड़ते ।

बचपन की यादों में
आँचल बार-बार उलझता
परन्तु किसी सम्मोहन से
उसके पग बराबर
आगे बढ़ते जाते ।

मेरा साया

प्रचंड प्रकाश के सामने
खड़े रहने में
मेरा अपना साया
मेरा पीछा करता है।

मैं जहाँ, जिस तरफ़
भी क्यों न जाऊँ
वह सदा मेरे साथ
चिपटा रहता है।

पीछे मुड़कर
और झुक कर
उसे पकड़ता हूँ
मेरे हाथों में
मुट्ठी भर धूल के सिवा
कुछ नहीं आता है।

दर्पण

अपने दिल के
दर्पण में
तुम्हें नित्य देख
मुझे परम
संतोष होता था,

परन्तु मेरी ही
उपेक्षा से
दर्पण पर निरन्तर
धूल जमती रही
तुम्हारा दिव्य रूप
अस्पष्ट हो गया।

और एक दिन
मेरे हाथों ही
दर्पण टूट कर
चूर-चूर हो गया।

अब तुम्हारा
धुँधला स्वरूप
देखने से भी
मैं पूर्णतया
वंचित हूँ।

कच्चे धागे

संदिग्ध अधूरे विश्वास
और शंकित धारणाओं
के कच्चे धागों में
मैं बार-बार
संकल्प की गांठें
लगाता रहता हूँ।
परन्तु तनिक से खिंचाव पर
ये टूट जाते हैं
और मेरा जीवन
सारा संतुलन खो,
बंधन हीन
हो जाता है।

राजनीति

राजनीति वह तंत्र है
जिस में सब कुछ ही
तंत्र-हीन हो जाता है।

कड़ुवा यथार्थ

कितनी सुन्दर-सुन्दर
झाँकियाँ
गण-तंत्र दिवस पर
प्रतिवर्ष,
राजधानी के
विशाल राजपथ पर
राष्ट्र का वैभव
और ऐश्वर्य
प्रदर्शित करती
दिखाई देती हैं !

परन्तु साथ ही
भव्य-भवनों के
पार्श्व में
अंधेरी, सड़ी-गली
झोंपड़ियों में
अभावों की घुटन में
पीले पड़े चेहरे

और
वेवसी में मुरझा गई
            जिन्दगियाँ
तीखा व्यंग्य लिये
कड़ुवे यथार्थ का
वोध
            कराती हैं।

बेबस गरीबी

कारें
लगातार बढ़ती रहीं,
मंजिलें
ऊपर चढ़ती गईं,
बेबस गरीबी !
झोंपड़ियाँ
बराबर बनती रहीं !

जनता

मैं जनता हूँ
मूक बधिर
दृष्टिहीन भी
मेरा काम
श्रम करना
कर देना
और शासन का
भार ढोना है।

मैं जनता हूँ
भूखी-प्यासी
अपने आँसू
स्वयं पीती हूँ
आश्चर्य है
फिर भी
जीती हूँ !

आँधी

काली आँधी !
लगता है
जैसे समय
ठहर गया था
सूरज ने भी
गुबार की मटमैली चादर
ओढ़ ली थी
प्रकाश के अभाव में
सब कुछ ही पूर्णतया
अंधकार में डूब गया था
सब कुछ तहस-नहस हो
सामान्य जीवन
यह कैसी आँधी थी
अप्रत्याशित और
कितनी भयंकर !

समय की ठोकर

निर्बाध सत्ता का
भरा प्याला
छलका
और—
गिर कर
चूर चूर हुआ !

कहाँ रहा
मद ?
किधर लुढ़का
प्याला ?
कदाचित्
नशे में चूर होकर
सब कुछ
लुटने के बाद ही
आँख खुलती है !

यश

वह सदा
चाँद की तरह
बढ़ता
और घटता
रहता है

सोलह कला
पूर्ण होने
पर भी
उस में
दाग रह
जाता है।

ग्रहण

काल के
चक्र में
कभी-कभी
दहकते
सूरज को
अपना ही
प्रकाश
ग्रस
लेता है।
और शक्ति
का
वह महान्
स्रोत भी
अंधकार में
डूब
जाता है।

समुद्र-मंथन

विशाल
जन-सागर
उद्वेलित
हो उठा है
असंतोष की
तूफानी लहरें
चारों ओर
उमड़ रही हैं।
समुद्र-मंथन में
अमृत के लिए
छीना-झपटी
हो रही है।
अंत में क्या,
जनता के लिए
केवल गरल
रह जायगा ?

क्रासिंग

एक क्रासिंग;
जब-जब मैं
वहाँ खड़ा होता हूँ
आश्चर्य में
डूब जाता हूँ
राज-पथ
और जनपथ
दो-मार्ग
अलग अलग
एक दूसरे को
काटते हुए
भिन्न भिन्न
दिशाओं में
घूम जाते हैं।
वे न समानांतर
चलते हैं
न कहीं जाकर
मिलते हैं।

हाँ…!
स्वराज्य में भी
राज-पथ
और जनपथ
अलग अलग ही
स्वतंत्र रूप से
अपने अपने
निर्धारित स्थानों में
पहुँचते हैं।
एक भव्य
राज-प्रासद में
जहाँ की
भूल-भुलैयों में
आम आदमी
खो जाता है।
और दूसरा
जाता है
हरिजन-बस्ती में
प…र…न्तु
दुर्भाग्यवश
वहाँ अब
गांधी नहीं रहते हैं
वे भी अब
राजघाट में
निवास करते हैं।

नव वर्ष

आधी रात के
सन्नाटे में
एकाएक
द्वार पर लगी
'काल-बैल'
बज उठी
बड़े संकोच से
कपाट खोले
मैंने झाँका,
एक अतिथि
अनजान
मुख पर
मंद मुसकान,
नई उजली
वेश-भूषा में
पीठ पर
उपहारों की
गठरी लिये
सामने खड़ा था।

लंबी थकान
से भरी
मेरी उनींदी
आँखों में
एक चमक
आ गई
और अपने-आप
मेरा मस्तिष्क
अतिथि के
स्वागत में
झुक गया।

वन–मानुष

गहरी नींद में
मैंने स्वप्न देखा
एक वन-मानुष
लहू से सने हाथ
चिल्लाता दहाड़ता
सब कुछ उजाड़ता
निरंकुश चहुँ ओर
भाग रहा है।
भयभीत हो
मेरी नींद खुल गई,
कमरे में फैले
बिजली के प्रकाश में
सामने दीवार पर
टंगे दर्पण में
अपना प्रतिबिंब देख
मुझे लगा
वह मैं ही था।

अवैध संतान

गरीबी
अमीरी का श्रृंगार
करने के लिए
दहेज में आई
एक दासी।

गरीबी
अमीरी की
दान वृत्ति बनाये
रखने के लिए
मन्दिर के द्वार पर
बैठी हुई
एक भिखारिन।

गरीबी
अमीरी की श्रेष्ठता
और आन-बान
का चिह्न-रूप
बंधक के तौर पर

खरीदी हुई
बांदी !

गरीबी
अमीरी की
उच्च अट्टालिका के
साये में पलती
उसी की दुत्कारी
अवैध संतान।

खोज

युगों से मनुष्य
कुछ नया
विशिष्ट और
चमत्कारपूर्ण
खोजता हुआ,
आज वह
पहुँच गया है
चाँद पर
जहाँ न हवा
न पानी
न जीवन की
कोई निशानी ।

झुठलाया सत्य

वह थी शकुन्तला
देवताओं का शाप
या भूल किसी
विवेक की
तापस के
परित्यक्ता कन्या
शकुन द्वारा सुरक्षित
कण्व के आश्रम में
पाली गई
पुनः बनी
परित्यक्ता नारी !
पौरुष के झूठे वायदों
का प्रदर्शन
कितनी बड़ी
विडम्बना !
उसी परित्यक्ता का सुत
इस धरती का
नायक बना

और उसी के नाम पर
देश भारत कहलाया
मानो समाज ने
अपना ही
झुठलाया सत्य
स्वयं
अंगीकार कर लिया।

स्वप्न

दिन ढलने पर
थकावट से
चूर सूरज की
निस्तेज किरणें
उदासी में भरी
भटकती हैं।
और फिर एकाएक
दूर क्षितिज पर
घिरते अंधियारे में
प्रतीक्षा में खड़ी
रजनी की
अधखुली पलकों में
स्वप्न बन
समा जाती हैं।

कृतघ्नता

हम ने अपने हाथों
अपने मुक्तिदाता का
वध किया
सब शून्य हो गया।
अपनी भूल को
हमने स्वीकारा
अपने को धिक्कारा,
परन्तु शीघ्र ही
हम फिर
अंधेरे में खो गये।
उसकी स्मृति तक
शिलाओं के नीचे
दबाकर गहरे
उसे भूल गये।
बापू सचमुच
हमसे
सदा के लिए
छूट गये।

भयावह सन्नाटा

अंधेरी रात की
नीरवता में
यादों के तार
झनझना उठते,
बीती घटनायें
ताल-वद्ध थाप
देने लगतीं,
अनेक परिचित
स्वरों की गूँज
प्रखर हो उठती
मेरे अर्ध-मुँदे
नयनों में
एक सुनहरा स्वप्न
साकार होने लगता।
परन्तु,
अगले ही क्षण
नींद खुलने पर
यथार्थ की
कड़ुवाहट लिये,

वर्तमान का
भयावह सन्नाटा
गहन अंधकार में
मुझे पूर्णतया
डुबो देता।

विरासत

सार्वभौम प्रेम
सम्वन्धी
हमारे उपदेश
और विश्व शान्ति
के संदेश
सब खोखले
होते हैं,
क्योंकि
नई उगती पौध
और आने वाली
पीढ़ी
के लिए
हम विरासत में
छोड़ते हैं
आणविक शस्त्रों के
अतुल भंडार
एवं विश्व युद्ध
के मद का
उपहार।

हमराही

ओ जीवन-पथ के
उदास राही !
अपने द्रवित हुये आँसू
मेरी क्षुद्र झोली में
डाल दे,
मेरा अकिंचन हृदय
उन्हें सहज सोख लेगा।

तुम्हारा गहरा घाव
भरने में असमर्थ
होने पर भी
तुम्हारा दर्द
बाँट लेने में मुझे
परम संतोष होगा।

मेरे पास भेंट के लिए
पुष्प नहीं हैं,
परन्तु तुम्हारी
राह में बिखरे कांटे

सहर्ष बटोर लूंगा।

ओ दुर्गम पथ के
थके राही !
मैं अपंग और
अशक्त हूँ
परन्तु अपने प्यार की
ठंडी छाँव में
कुछ पल विश्राम देकर
तुम्हें आगे बढ़ने के
योग्य अवश्य बना ऊँगा।

□□
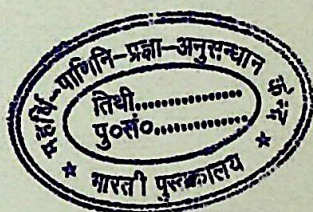
मुकुल प्रभात केदार का जन्म उर्दू के प्रसिद्ध कवि डॉ० इक़बाल की जन्मभूमि स्यालकोट नगर (अब पश्चिमी पाकिस्तान) में १७ अप्रैल १९०६ को हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा उर्दू अंग्रेज़ी भाषाओं में मिली। इक़बाल और टैगोर की रचनाओं का विशेष प्रभाव पड़ा।

छोटी आयु में ही स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेते हुए सरकारी विद्यालय त्याग, नैशनल कॉलेज लाहौर में प्रविष्ट होने पर अनेक हिन्दी प्रेमियों के सम्पर्क में आने से हिन्दी के प्रति अनुराग पैदा हुआ और उन्होंने शीघ्र ही प्राणपण से उसे अपना लिया। साहित्य-साधना देहरादून की सुरम्य घाटी में निवास करने के दिनों में प्रारंभ हुई।

'अधखिले फूल' काव्य रचना के अतिरिक्त लेखक की कहानियाँ और अनेक विषयों पर लेख आज से तीन दशक पूर्व सरस्वती, विशालभारत, माधुरी, चाँद, सुधा, विश्वमित्र, हंस आदि हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर पर्याप्त लोक-प्रिय हुए। हाल में भी अनेक कहानियाँ हिन्दी पत्रिकाओं में छपी हैं। 'पंखुरियाँ' उनकी पिछले दिनों लिखी कविताओं का संग्रह है।

लेखक के जन्म का नाम केदारनाथ था, इलाहाबाद कॉलेज में वे अपने को मुकुल प्रभात केदार लिखने लगे थे। उनकी अधिकतर रचनाएँ एम० पी० केदार के नाम से प्रकाशित होती रही हैं।

अब आप 'नवनीत', रुड़की (उ० प्र०) में स्थाई रूप से निवास करते हैं।

वाणी प्रका

६१—एफ, कमला नगर, दिल्ली—११०

दूरभाष :